

T.T.D. Religious Publications Series No. 1112

Price :

Published by **Sri M.G. Gopal**, I.A.S., Executive Officer,
T.T.Devasthanams, Tirupati and Printed at T.T.D. Press, Tirupati.

श्रीनिवास बालभारती

त्यागी दधीचि

हिन्दी अनुवाद
डॉ. एम. रंगय्या



तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्
तिरुपति

श्रीनिवास बालभारती - 164

त्यागी दधीचि

तेलुगु मूल
श्री तूमुलूरि लक्ष्मीनारायणा

हिन्दी अनुवाद
डॉ. एम. रंगय्या



तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्

तिरुपति

2014

Srinivasa Bala Bharati - 164
(*Children Series*)

THYAGEE DADHEECHI

Telugu Version

Sri Tumuluri Lakshminarayana

Hindi Translation

Dr. M. Rangaiah

Editor-in-Chief

Prof. Ravva Sri Hari

T.T.D. Religious Publications Series No. 1112

©All Rights Reserved

First Edition - 2014

Copies : 5000

Price :

Published by

M.G. Gopal, I.A.S.,

Executive Officer,

Tirumala Tirupati Devasthanams,

Tirupati.

D.T.P.:

Office of the Editor-in-Chief

T.T.D, Tirupati.

Printed at :

Tirumala Tirupati Devasthanams Press,

Tirupati.

दो शब्द

बच्चों का हृदय सुमनों की भांति निर्मल होता है। उत्तम कपूर से बढ़ कर सुवासित उनके दिलों में बढ़िया संस्कार पैदा करना है। यदि उनमें हम अच्छे संस्कार डालते हैं तो चिर काल तक आदर्श जीवन बिताने के लिए सुस्थिर नींव पड जाती है। बचपन में संस्कार प्राप्त बच्चे भावी पीढ़ियों के लिए समुचित मार्ग दर्शन कर सकते हैं। इसलिए हमारे इन होनहार बच्चों के लिए हमारी विरासत बने पौराणिक मूल्यों तथा इतिहास में निहित मानवता के मूल्यों का परिचय कराना अत्यंत आवश्यक है।

बिना लक्ष्य का जीवन निष्फल होता है। बच्चों को लक्ष्य की ओर प्रेरित कर उनके जीवन को सही मार्ग पर ले जाने की जिम्मेदारी बड़ों के ऊपर है। महान व्यक्तियों की आदर्शमय जीवनियों का परिचय करा कर उनमें प्रेरणा जगाने के उद्देश्य से 'श्रीनिवास बालभारती' का शुभारंभ किया गया है।

इस योजना का मुख्य लक्ष्य नैतिक मूल्यों के माधुर्य के बच्चों तथा सर्वत्र फैलाने का है। हमें यह जानकर अत्यंत आनंद हो रहा है कि बच्चे तथा परिवार के सभी लोग इन पुस्तकों का स्वागत कर रहे हैं। इससे तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् का मुख्य उद्देश्य कुछ हद तक सफल हो रहा है।

'श्रीनिवास बालभारती' की योजना तैयार करके उत्तम पुस्तकों का प्रकाशन करवा कर कम कीमत पर सबको उपलब्ध कराने का प्रयास, करनेवाले प्रो.एस.बी. रघुनाथाचार्य अभिनंदनीय हैं।

इस प्रकाशन में सहयोग देनेवाले लेखकों तथा कलाकारों के प्रति मैं अपना धन्यवाद अर्पित करता हूँ।

एम.ए. जोषी
कार्यकारी अधिकारी

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति

प्राक्कथन

आज के बच्चे कल के नागरिक हैं। अगर वे बचपन में ही महोन्नत सञ्जनों की जीवनियों के बारे में जानकारी लें, तो अपने भावी जीवन को उदात्त धरातल पर उज्ज्वल रूप से जीने के मौके को प्राप्त कर सकते हैं। उन महोन्नत सञ्जनों के जीवन में घटित अनुभवों से हमारी भारतीय संस्कृति, जीवन में आचरणीय मूल धार्मिक सिद्धान्तों तथा नैतिक मूल्यों आदि को वे निश्चय ही सीख सकते हैं। आज की पाठशालाओं में इन विषयों को सिखाने की संभावना नहीं है।

उपरोक्त विषयों को ध्यान में रखकर तिरुमल तिरुपति देवस्थान के प्रचुरण विभाग ने डॉ. एस.बी. रघुनाथाचार्य के संपादन में स्थापित “बाल भारती सीरीस” के अन्तर्गत विविध लेखकों के द्वारा तेलुगु में रचित ऋषि-मुनियों व महोन्नत सञ्जनों की जीवनियों से संबंधित लगभग 900 पुस्तिकाओं का प्रकाशन किया। इनका पाठकों ने समादर किया और इसी प्रोत्साहन से प्रेरित होकर अन्य भाषाओं में भी इन पुस्तिकाओं के प्रकाशन करने का निर्णय लिया गया। प्रारम्भिक तौर पर इनको अंग्रेजी व हिन्दी भाषाओं में प्रकाशित किया जा रहा है। इनके द्वारा बच्चे व जिज्ञासु पाठकों को अवश्य ही लाभ पहुँचेगा।

इन पुस्तिकाओं के प्रकाशन करने का उद्देश्य यही है कि बच्चे पढ़ें और बड़े लोग इनका अध्ययन कर, कहानियों के रूप में इनका वर्णन करें, तद्वारा बच्चों में सृजनात्मक शक्ति को बढा दें। फलस्वरूप बच्चों को अच्छे मार्ग पर चलने की प्रेरणा निश्चय ही बचपन में ही मिलेगी।

आर. श्रीहरि

एडिटर-इन-चीफ
ति.ति.देवस्थानम्

स्वागत

**श्रीनिवासदयोद्भूता बालानां स्फूर्तिदायिनी।
भारती जयताल्लोके भारतीयगुणोज्ज्वला॥**

जब खण्डान्तरों में सभ्यता की बू तक नहीं थी तब भरतवर्ष अपनी सभ्यता, संस्कार, धर्म, नैतिकाचरण के लिए प्रसिद्ध हो गया था। जो इस पुण्य-भूमि पर जन्मता है वह धर्माचरण में स्थिर होकर अधर्म का सामना करता है और क्रमशः ईश्वराभिमुखी होकर यशोवान होता है। ऐसे महात्माओं के प्रभाव से हमारे जीवन इह-पर दोनों प्रकार लाभान्वित होते हैं। उनके आदर्शमय जीवनों से स्फूर्ति पाता है और समझता है कि मैं इस महान भारत का वारिस हूँ; परंपरागत इस संप्रदाय की रक्ष करना मेरा कर्तव्य है। ऐसी भावना से वह अपने देश की सेवा के लिए तैयार रहता है।

वास्तव में इस देश में कई धर्मात्मा, वीरपुरुष, वीरनारियाँ पैदा हुईं उन्होंने संस्कृति की दृढ़ नींव डाली है। हमारा भाग्य यही है कि हमारी पैतृक-संपदा के रूप में उज्वल इतिहास की परंपरा है। उनके आदर्शों के पालन करने से ही कोई विद्यावान-विज्ञानी बन सकता है। राष्ट्र के जीवन प्रवाह में वही विज्ञान अचल रहकर जीवन को सुशोभित करता रहता है। इसी सिलासले को आगे बढ़ाने के लिए महात्माओं के जीवनों को संक्षिप्त रूप में आपके सामने रखता हूँ।

हे भारत के भाग्यदाता बालक-आइए-स्फूर्ति पाइए

एस.बी. रघुनाथाचार्य

प्रधान संपादक

त्यागी दधीचि

शान्ति - कामना :

एक बार देव और दानवों के बीच युद्ध छिड़ गया। उस युद्ध में देवों की विजय हुई, पर इस युद्ध से सबकी हानि हुई थी। सबके मन में युद्ध के प्रति विरक्ति हुई। सभी शांति की इच्छा करने लगे।

फिर भी एक - दूसरे के प्रति संदेह बना रहा। असावधान रहे तो दोनों भी संकट में पड़ सकते थे। हानि की संभावना के कारण देव - दानव सतर्क रहने लगे। पुनः युद्ध न हो - इसके लिए उन्होंने निश्चय किया कि अस्त्र - शस्त्रों से दूर रहें। सभी अस्त्रों को ध्वंस करें। पर दोनों में भय था कि कहीं शत्रु उन पर आक्रमण करेगा तो, तब क्या करें? उन्हें उपाय सूझा कि चुपचाप अस्त्र-शस्त्रों को छिपा कर रखें।

अस्त्रों को कहाँ छिपायें :

देवताओं को संदेह हुआ कि इन हथियारों को कहाँ छिपाये? उन्होंने सोचा कि इसके लिए कौन-सा प्रदेश उपयुक्त होगा? सबने निर्णय किया कि उन्हें दधीचि महर्षि के पास छिपाये!

दधीचि ब्रह्मज्ञानी थे। महान तपस्वी थे। शक्ति - संपन्न और सत्य - गुण - संपन्न थे। शत्रुओं को भी मित्रों में बदलने का वह शांति - वन था। उनका आश्रम परम पावन था। मन में खोट रख उसमें कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता था। जाने - अनजाने में भी कोई दधीचि आँख से बचाकर हथियारों को ले नहीं सकता था। इस कारण देवताओं ने दधीचि के पास हथियारों को छिपाना चाहा।

आश्रम - जीवन बिगड़ जायेगा :

देवों ने जाकर दधीचि से अपने मन की बात बता दी। दधीचि ने उनकी बात मान ली, लेकिन दधीचि की पत्नी गभस्तिनी ने इस बात को स्वीकारा नहीं। वास्तव में गभस्तिनी महान पतिव्रता थी। वह अपने पति के हित चिंतक भी। लोकज्ञान से युक्त विवेकवान महिला थी। उनका विचार था कि देवताओं के हथियारों को छिपा कर रखने से दानव नाराज हो जायेंगे। देवताओं को हथियारों को यदि लौटा न सकें तो वे भी आग बबूला बनेंगे इसलिए गभस्तिनी का विचार था कि क्यों शान्तिमय आश्रम जीवन में बाधाओं को आमंत्रित करें? अनावश्यक तकरार को वह चाहती न थी।

लेकिन दधीचि परोपकारी व्यक्ति थे। वचन निभाना वे भली - भाँति जानते थे। वे सत्यव्रत और आत्मविश्वास के धनी थे। सबसे अधिक वे एक कारण जन्मी थे। उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य था।

दधीचि का जन्म, उनका इतिहास इस बात के साक्षी हैं।

कारण जन्मी :

दधीचि सुकन्या और च्यवन महर्षि के पुत्र थे। भार्गव कुछ लोग दधीचि को कर्दम प्रजापति की पुत्री शांति का पुत्र मानते हैं, वंश में उनका जन्म हुआ था। सुकन्या शर्याति महाराज की सुपुत्री थी। एक समय वह अपने पिता के साथ मिलकर मनोरंजन के लिए जंगलों में गई। तब च्यवन महर्षि तपस्या में लीन थे। पूरा शरीर बाँवियों से भर गया था। आँखें ही महान तेज से चमक रही थीं। सुकन्या ने उन्हें जुगुनू मान तीली से उन्हें छुआ, जिससे उनकी आँखें चली गई। अनजाने में हुए अपराध से दुखी हो शर्याति ने च्यवन से क्षमा माँगी। भूत, भविष्यत और वर्तमान के ज्ञाता

च्यवन महर्षि ने सुकन्या से उनका विवाह रचा देने से दोष के परिहार होने की बात बता दी।

कैसे विवाह करें ?

च्यवन महर्षि वृद्ध थे। तपस्वी थे। अंधे भी। सुकन्या थी नवयौवना। सुंदरता की देवी। इस बात से राजा शर्याति बहुत व्यथित हुआ, पर सुकन्या विदुषी थी। उसने पिता को समझाया - “ब्रह्मर्षि च्यवन से विवाह कोई सरल साधारण बात नहीं है। इससे मेरा जीवन ही धन्य बन जायेगा।” उसने इस विवाह को सहर्ष स्वीकारा। अद्वितीय सुंदरी सुकन्या च्यवन महर्षि की पत्नी के रूप में अत्यंत भक्ति एवं श्रद्धा के साथ उनकी सेवा - शुश्रूषा में अपने जन्म को सार्थक बनाने में तल्लीन हुई।

अश्विनी देवताओं का प्रलोभन :

ऐसी स्थिति में देवताओं के वैद्य अश्विनी देवताओं ने एक दिन एकांत के समय सुकन्या को समझाया कि वह सुंदर है। ऐसी सुंदरी के लिए एक वृद्ध और अंधे च्यवन की सेवा में लगा रहना जीवन को व्यर्थ करना है। यदि वह चाहेगी तो वे एक अत्यंत सुंदर युवक को उसके लिए ला सकते हैं। सुकन्या चतुर थी। उसने अपनी चतुराई से अपने पति च्यवन को ही युवक एवं सुंदर रूप वाले में बदलवा लिया।

सुकन्या के त्याग एवं चतुराई से मुदित होकर च्यवन ने सुकन्या को वर के रूप में दधीचि को प्रदान किया। इसी कारण दधीचि में त्याग, बुद्धिमानी, शारीरिक दृढ़ता आदि गुण जन्म से ही विद्यमान थे।

जन्म से ही सिद्ध परोपकार की भावना :

बचपन से ही दधीचि ने महान तपस्या करने को ठान लिया। सरस्वती नदी - तट पर एक आश्रम का निर्माण कर तपोमय जीवन -

यापन करने लगा। ऐसे समय एक दिन इंद्र उनके पास आया और उसने दधीचि को कई शास्त्रों का ज्ञान कराया और अंत में ब्रह्म विद्या को प्रदान किया। इंद्र ने शर्त लगाया कि वे उन्हें किसी को न सिखाए। यदि ऐसा करें तो वह दधीचि का सिर खण्डित करेगा।

दधीचि को घोड़े का सिर :

इंद्र के द्वारा दधीचि ने शास्त्र - ज्ञान पाने की बात सुन अश्विनी देवता उनके पास आये। उन्होंने दधीचि के माता - पिता पर जो उपकार किया था, उन्हें बताया। उन्होंने दधीचि से महान शास्त्र - ज्ञान देने की प्रार्थना की। अश्विनी देवताओं ने यह भी बताया कि वे देवताओं के हित के लिए ही इस ज्ञान का प्रयोग करेंगे। दधीचि परोपकारी थे। अतः उन्होंने उन्हें शास्त्र - ज्ञान प्रदान किया। एक प्रकार से इंद्र की अवज्ञा थी। दधीचि ने इंद्र की शर्त बता दी। उन्होंने दधीचि का सिर काट कर उसके स्थान पर घोड़े का सिर लगा कर शास्त्र - विद्या सीख ली। यह सुन इंद्र ने दौड़ते हुए आकर दधीचि का सिर काट दिया। तब अश्विनी देवताओं ने अपने द्वारा सुरक्षित दधीचि के सिर को जोड़ उन्हें बचा लिया। इससे दधीचि को ख्याति सर्वत्र व्याप्त हुई।

देवहितार्थ जीवन :

एक समय दधीचि तथा उनके बचपन के मित्र क्षुप नामक राजा के बीच एक विवाद खड़ा हुआ। दधीचि ब्रह्म - शक्ति को महान मानते थे, क्षुप क्षात्र शक्ति को। इस विवाद में क्षुप ने एक अस्त्र से दधीचि का सिर काट दिया। यह सुन भार्गव (शुक्र) ने जल्दी जाकर अपने मंत्र प्रभाव से दधीचि को बचा लिया। साथ ही भार्गव ने उन्हें शिव - दीक्षा में जाकर, शक्ति-संपन्न बन विराजने का आशीष भी दिया।

दधीचि ने शिवदीक्षा में जाकर, शुभप्रदाता शिवजी को प्रसन्न कर लिया। शिवजी की कृपा से उन्होंने वज्रशरीर, तीनों लोकों को जीतने की शक्ति तथा जब चाहे तब स्वर्ग शक्ति प्राप्त की।

दधीचि को विष्णु का ज्ञान - बोध :

दधीचि और क्षुप के बीच का विवाद चलता रहा। क्षुप ने कई अस्त्र - शस्त्रों के साथ दधीचि पर आक्रमण किया। पर सारे अस्त्र - शस्त्र विफल हुए। क्षुप विष्णु भक्त था। उसने विष्णु की शरण ली थी। विष्णु ने क्षुप के साथ दधीचि पर आक्रमण कर चक्रायुध का प्रयोग किया। दधीचि ने अपनी तपः शक्ति से उसे रोका। विष्णु ने माया का प्रयोग किया। दधीचि ने माया पर भी विजय पाई। इतना ही नहीं उन्होंने मजाक उड़ाया कि शिवशाक्ति के आगे विष्णु शक्ति ठहर न सकेगी। विष्णु ने उनकी शिवभक्ति से प्रसन्न होकर दधीचि को बताया कि शिव - विष्णु दोनों एक हैं। दधीचि के अज्ञान को दूर कर क्षुप को बताया कि वह दधीचि की शरण में जावे। दधीचि को विष्णु ने यह भी बताया वह देवताओं के हित जिये। इसके बाद वे अदृश्य हो गए।

इस प्रकार दधीचि कई घटनाओं के द्वारा अधिक शक्तिमान, तपस्वी और शिव-विष्णु के अनुग्रह के पात्र बने।

देवताओं के अस्त्र - शस्त्रों की रक्षा :

कर्त्तव्य परायण दधीचि का जन्म संसार के हित के लिए ही हुआ था। उन्होंने अपनी धर्मपत्नी गभस्ति को धर्म के सूक्ष्म रहस्यों को बताया और देवताओं के हथियारों की रक्षा की जिम्मेदारी भी ली। उन्होंने यह

बताया कि उनका जीवन देवहितार्थ और त्याग के लिए हुआ है। गभस्ति भी पति की कर्तव्य निष्ठा को देख पुलकित होती थी।

देवताओं का आलस्य :

काल बीतता जा रहा था। हजार वर्ष बीत गए। देवता अपने अस्त्र - शस्त्रों को भूल गए। सुखपूर्वक वे विलासी जीवन बिता रहे थे। वे अपने कर्तव्य को भी भूल गए थे। वे भ्रम में थे कि उन्हें अब दानवों से कोई भय नहीं है। न उन्हें दैवीय भावना के प्रति श्रद्धा थी और न शक्ति की आवश्यकता के प्रति दृष्टि। अकर्मण्य बन जी रहे थे। वे यह भी भूल गये थे कि धर्म - रक्षा में उनका क्या कर्तव्य है?

उधर दानव अपनी पराजय को भूले न थे। देवताओं से बदला लेने को सोच रहे थे। इसके लिए वे अपने आपको तैयार कर रहे थे।

इंद्र का अपराध - वृत्र का अविर्भाव :

एक बार इंद्र ने विश्वरूप का संहार किया था। विश्वरूप ब्रह्मज्ञानी था। बृहस्पति जब देवताओं को छोड़ कर गये थे तब दानवों ने देवताओं को स्वर्ग से भगा दिया था। स्वर्ग पर उनका ही अधिकार था। ऐसे समय ब्रह्म की आज्ञा से विश्वरूप को अपना गुरु बना लिया। विश्वरूप ने उन्हें नारायण कवचोपदेश दिया। इसके प्रभाव से देवता फिर से स्वर्ग के अधिकारी बने। ऐसे समय इंद्र गुरु का वध कर पाप का भागी बना।

विश्वरूप के पिता त्वष्ट महामुनि अपने पुत्र के वध का समाचार सुन क्रुपित हो गये। इंद्र - वध ही उनका कर्तव्य बन गया। वे अपने तप को दाँव पर लगा दिया। इंद्र को मारने वाले महाशक्तित्वान के आविर्भाव

के लिए एक यज्ञ किया। इससे महाशक्ति - संपन्न, दीर्घकाय, शत्रु - भयंकर महान व्यक्ति का उद्भव हुआ। यही वृत्रासुर था।

वृत्र का बढ़ना - देवताओं का पलायन :

अपने पिता त्वष्ट महामुनि से वृत्र ने अपने कर्तव्य को जाना। अपने भाई विश्वरूप का वध करनेवाले इंद्र आदि देवताओं के वध के लिए निकल पड़ा। सबसे पहले उसने असुरगुरु शुक्राचार्य से आवश्यक विद्याओं को सीखा। आशीष पाया और असुरगणों को लेकर देवताओं से युद्ध के लिए निकल पड़ा।

देवताओं की अशक्तता :

वृत्र के आक्रमण की बात सुन देवता काँप उठे। युगों से वे सुख - लालसा के वशीभूत हो, धर्मच्युत बन, मत्तजीवन बिताते रहे। वे भाग कर बच भी नहीं सकते थे। वृत्रासुर ने उन्हें भगा - भगा कर मारने का निश्चय किया। देवताओं को यह भी स्मरण न था कि उनके हथियार दधीचि के पास है। स्मरण आने पर भी उन्हें डर था कि इतने वर्षों के बाद उनकी स्थिति कैसी होगी? जो उपयोग में नहीं रहते वे बेकार बन जाते हैं। इस बात से वे अवगत थे। आक्रमण शुरू हुआ। देवताओं ने उससे टकराना प्रारंभ किया। वृत्रासुर देखते - देखते उन्हें अशक्त करने लगा। देवताओं के हथियार उसके आगे बेकार थे। उनके अस्त्रों को वह निगल कर बेकार कर रहा था।

वह एक विचित्र युद्ध था। वास्तव में वह युद्ध ही नहीं था। एक अद्वितीय शक्तिशाली वृत्र, साथ में प्रशिक्षित असुरगण, व्यर्थ में समय गँवाकर सुख - लालसा के भोगी देवता, वे कर ही क्या सकते थे। एक

ओर तमोगुण था दूसरी ओर सत्वगुण। कितने ही सत्वगुणी हैं पर पराजय उनका दरवाजा खटखटा रहा था। कमजोरी ही पराजय का कारण बनती है।

रक्षा के लिए देवताओं के प्रयत्न :

ऐसी दशा में दीन व दुखी देवता भयभीत होकर ब्रह्मा की शरण में गए। पर ब्रह्मा ने अपनी मजबूरी प्रकट की। वे विष्णु के पास गए। समस्त लोकों में शक्तिमान विष्णु ने भी अपनी असहयता व्यक्त की। इसके कई कारण थे।

वृत्र का आविर्भाव तपः फल से हुआ था। वह धर्ममार्ग पर युद्ध कर रहा था। सबका कथन था कि विश्वरूप का वध न्याय - संगत न था। ऐसे समय किसी ने भी वृत्र के कार्यों को अनुचित न माना।

वृत्र महाभक्त थे :

नाम के लिए वृत्र असुर था। पर वह महाभक्त था। प्रवृत्ति के कारण ही देवता और राक्षस इस प्रकार पुकारे गये थे। दूसरों के प्राण - हरण के कारण ही लोगों ने उन्हें असुर कहा। वृत्र तेजस्वी और धर्मात्मा है। इस कारण वह मारा नहीं जा सकता। विष्णु ने इस बात को देवताओं से स्पष्ट कहा।

वृत्र के अंत का मार्ग :

देवताओं की यह दुर्दशा देख विष्णु ने वृत्र के मरण के रहस्य को उन्हें बता दिया। विश्वरूप के वध के कारण ही देवता विपत्ति में पड़े थे।

विश्वरूप से अधिक उनके गुरु की शरण में जाने से ही देवता बच सकते हैं। विश्वरूप को नारायण कवच प्रदान किया था उनके पिता त्वष्ट महामुनि ने। वे तो देवताओं की रक्षा करेंगे नहीं। वास्तव में दधीचि ने ही त्वष्ट महामुनि को यह कवच प्रदान किया था। इस कारण विष्णु ने देवताओं को दधीचि की शरण में जाने को कहा।

दधीचि कैसे रक्षा कर सकेंगे ?

दधीचि शुद्ध सत्वसंपन्न थे। वे तो किसी का वध भी नहीं कर सकेंगे। वे हिंसा के नाम से दूर भागते हैं। अब प्रश्न उठता है कि वे देवताओं की रक्षा कैसे कर सकेंगे?

दधीचि की हड्डियाँ चाहिए :

दधीचि तो स्वयं वध नहीं करते, पर उनकी अत्यंत दृढ़ हड्डियाँ, विश्वकर्मा से हथियारों में बदलने पर, वे वृत्रासुर - संहार में सहायक बनेंगे। विष्णु ने वृत्रासुर के अंत का उपाय बताया। क्या प्राणों को मारना न्याय संगत होगा?

दधीचि की हड्डियों को माँगने का मतलब उनके प्राणों का हरण ही है। क्या वे इस बात को मान सकेंगे? एक समय दधीचि के सिर (घोड़े का सिर) को काटा गया था। क्या अब वे इंद्र की इच्छा के लिए दुबारा प्राणार्पण करेंगे? दधीचि के शिष्य थे त्वष्ट महामुनि उनके पुत्र थे विश्वरूप। विश्वरूप के हत्यारे इंद्र को दण्ड देने के लिए निकल पड़ा था महावीर वृत्रासुर। ऐसे वृत्रासुर वध के लिए दधीचि क्या अपने प्राण देकर हड्डियाँ प्रदान करेंगे? यदि दिया भी तो हड्डियों से बने ये अस्त्र शक्तिवान होंगे?

देवताओं के संदेह को सुन विष्णु ने उन्हें डाँटा - फटकारा? “दधीचि परोपकारी हैं। देवताओं के हित के लिए जी रहा है।” कह कर विष्णु ने याद दिलाया। उनके पावन शरीर की हड्डियाँ अत्यंत प्रभावकारी हैं। यदि विश्वकर्मा उनसे वज्रायुध बनायेगा तो विष्णु ने उन्हें भरोसा दिया कि वे उसमें वैष्णव तेज को भर देंगे।



आयुधों के लिए दधीचि से विनती :

इंद्र आदि देवता सिर झुकाये दधीचि के पास पहुँचे। उन्होंने दधीचि के आगे सविस्तार अपना दुखड़ा सुनाया। बिना हथियारों के कारण वे कितने दिन बने उन्होंने सुनाया।

कई वर्षों पूर्व इंद्र आदि देवताओं ने दधीचि के पास जो हथियार छिपाये थे वे अब नहीं रहे। कई वर्षों तक देवता हथियार लेने नहीं आये

थे। इस कारण उन्होंने उन पर मंत्र जल छिड़क कर उस जल को स्वयं पी लिया था। इस प्रकार निस्तेज बन सारे अस्त्र - शस्त्र ध्वंस हो गए थे। मंत्र जल को पीने के कारण उनकी शक्ति दधीचि में पच गई। दधीचि ने इसी बात को बताकर कि उनके पास अब कोई हथियार बचा नहीं है।

पुराने हथियारों के लिए नहीं :

तब देवताओं ने कहा कि हम पुराने हथियारों के लिए नहीं आये हैं। हम यह भी जानते हैं कि वे काम में नहीं आयेंगे। हम अब भगवान विष्णु के आदेश पर यह संदेश लेकर आये हैं। हमें आपकी अस्थियों की जरूरत है। डरते - डरते उन्होंने दधीचि से कहा। स्वार्थ के लिए, अपने हित के लिए, स्वर्ग पर अधिकार रख पाने के लिए दधीचि की अस्थियों को पाने का तात्पर्य उनके प्राणों को माँगने के लिए न? फिर डर न हो तो क्या होगा?

अस्थियों को माँगना प्राणों को माँगना ही है न ?

यह सुन दधीचि ने कुछ तीव्रस्वर में कहा - “अस्थियों के माँगने से तात्पर्य प्राणों को माँगना ही है न?” यह सुन देवताओं के मुँह तेजहीन हो गए। किस मुँह से वे दधीचि के प्राण माँग सकते हैं?

कैसे इस बात का समर्थन कर सकते हैं ?

स्वार्थी - याचक धर्म का सहारा लेता है। यह सहज है। उन्हें कुछ प्राप्त करना ही आता है। लोभ मनुष्य से क्या नहीं कराता। देवताओं ने दधीचि को त्याग, दान, परोपकार के फल के बारे में बताया। शिबि, बलि, मयूरध्वज, रतिदेव जैसे त्यागधनियों के उदाहरण देकर उन्होंने सद्गुणों का बखान किया।

दधीचि ने बताया धर्म के बारे में :

यह सुन दधीचि हँस पड़े। उन्होंने कहा - हे देवताओं मैं ने परिहास के लिए कहा। वास्तव में देखा जाय तो मुझे प्राणों की कोई जरूरत नहीं है। नश्वर शरीर भी मुझे नहीं चाहिए। परोपकार, धर्म - हित, देवहित के लिए प्राणार्पण करने से धन्य का कार्य कौन होगा? मैं तो दूसरों के सुख - दुख में भाग लेने के कार्य को ही उत्तम धर्म मानता हूँ। अपनी इच्छानुसार आप मेरी अस्थियों को ले सकते हैं?" यह सुन देवताओं के चेहरे खुशी से दमक उठे।

दधीचि की अंतिम इच्छा :

पर दधीचि ने बताया कि उसकी एक अंतिम इच्छा है। जन्म से उन्होंने अपना सारा समय तप और तपोवनों में ही बिताया था। किसी प्रकार की तीर्थयात्रा नहीं की थी। मरने से पूर्व वे समस्त तीर्थयात्राएँ करना चाहते थे। यही उनकी अंतिम इच्छा थी। यह सुन देवताओं के चेहरे पीले पड़ गए। उनका डर था कि इन यात्राओं के कारण देरी होगी। उन्हें यह भी डर था कि कहीं दधीचि अपना मन न बदल ले। गभस्तिनी कहीं कोई रुकावट डाल न दे। इस कारण देवताओं ने अपनी समस्त शक्तियों के सहारे सारे तीर्थों को दधीचि के निकट ला दिखाया। दधीचि खुशी - खुशी उन में स्नान कर अधिक तेजस्वी और पावन बन गये। देवताओं के कार्य के लिए यह बहुत शुभदायक सिद्ध हुआ।

वहाँ जो तीर्थ पहुँच गये थे, उनको वहीं शाश्वत रूप से रह जाने के लिए दधीचि ने देवताओं से वर माँगा, तपोवाटिका के रूप में विख्यात नैमिशारण्य तब से सकल तीर्थों का आवास बन गया। इस कारण जो नैमिशारण्य की परिक्रमा करता है, उसे समस्त तीर्थ स्थानों की परिक्रमा

करने का फल मिलता है। इस प्रकार दधीचि ने मानवमात्र के कल्याण के लिए अंतिम समय में भी परोपकार का ध्यान रखा।

दधीचि का महान त्याग :

अपने सभी कामों को पूरा करने के बाद दधीचि समाधि स्थिति में चले गए। तब इंद्र ने देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा को बुलाकर आज्ञा दी कि दधीचि की अस्थियों से वज्रायुध को तैयार करें। दधीचि ने देव हितार्थ शरीर त्यागा था। फिर भी उस रक्त - मज्जापूर्ण शरीर को छूने में विश्वकर्मा को संकोच हो रहा था। यह देख इंद्र ने गायों को बुलवाया। उनसे दधीचि के शरीर को चाटकर उनकी हड्डियों को पवित्र बनाने को कहा। गायों के स्पर्श से रक्त - मज्जा आदि सूख गए और पावन हड्डियाँ निकल आयीं। विश्वकर्मा ने उन हड्डियों से आवश्यक सभी हथियारों का निर्माण किया। दधीचि ने देवताओं के अस्त्र - शस्त्रों को मंत्र जल से पावन बनाकर उस जल को पी लिया था। इस कारण उन हड्डियाँ में सारी शक्ति निहित थी। विश्वकर्मा के बनाये अस्त्रों में भगवान विष्णु ने वैष्णव तेज से उन्हें और भी शक्तिशाली बना दिया। इस प्रकार परमपावन, अद्भुत शक्ति - संपन्न, त्यागपूर्ण तपोमहिमा से पूर्ण, वैष्णव शक्ति से विलसित, महान प्रभाव संपन्न अस्त्र - शस्त्र देवताओं को मिल गए। देवताओं के हित के लिए शरीर त्यागने के कारण त्रिलोकों ने दधीचि आदर्शपूर्ण त्यागी के रूप में विख्यात हुए।

गभस्ति का सहगमन :

जब गभस्ति ने अपने पति के शरीर त्याग के बारे में सुना तब वह अपने पति के साथ सहगमन के लिए तैयार हो गयी तब वह गर्भवती थी। गर्भवती होकर सहगमन करना धर्म की बात न थी। ऐसा करने का उसे

अधिकार न था। अत्यंत साहसी गभस्ति ने ऐसी स्थिति में अपने गर्भ को चीर कर, गर्भस्थ शिशु को पास के पिप्पल वृक्ष की छाया में लिटाकर, सहगमन के कार्य को पूरा किया। कालांतर में यही शिशु पिप्पलाद महर्षि के रूप में ख्यात हुए।

असुर - संहार के लिए देवताओं का अग्रसर होना :

श्रेष्ठ हथियारों से लैस होकर देवता अब वृत्रासुर से टक्कर लेने चल पड़े। वह एक अद्भुत घटना थी। देव, दानव और मानवों की आसक्ति को बढ़ाने वाली यह परम अद्भुत घटना थी।

विजय किनकी ?

एक ओर वृत्रासुर के वध के लिए वज्रायुध लिए इंद्र थे, दूसरी ओर इंद्र वध के लिए यज्ञ से जन्में वृत्रासुर योद्धा सन्नद्ध था। ऊपर से इंद्र नारायण कवच से विराजमान था। इधर वृत्र भी नारायण भगवान का श्रेष्ठ भक्त था। अब इस समर में किसकी जीत होगी? यद्ध कैसे बढ़ेगा? इसका परिणाम क्या होगा? यही तीन लोकों की जिज्ञासा थी।

देवताओं को श्रीहरि का आश्रय मिला था और दधीचि जैसे सच्चे भक्त की संगति मिली थी। इस कारण उनका अहंकार मिट चला था। पश्चात्ताप की आग में जल कर वे पावन बन गए थे। उन्हें अब नये हथियार मिले। इस कारण उन में नया उत्साह था। नया जोश था।

वृत्र भी स्वतः धर्म की मूर्ति था। परम भक्त था। शक्तिशाली, महाज्ञानी, ब्रह्मतेज रखनेवाला और कारण जन्मी था।

दोनों अपने - अपने क्षेत्र में समर्थ और समान थे। देवता स्वतः सत्वगुणी थे। वृत्रासुर का आविर्भाव तमः प्रकृति से संबंधित था। पर

देवताओं में स्वार्थ की भावना अधिक थी। इस कारण उनमें भी कमी थी। देवासुर की प्रवृत्तियाँ प्रमुख रूप से मानसिक होती हैं। तमोगुण की अधिकता के कारण वृत्र वृत्रासुर बना। स्वार्थ तथा, अधिकार को बनाये रखने के लोभ के कारण देवता वृत्रासुर के समान बने। यह स्थिति बनी हुई थी।

दानवों का पलायन :

अब देव - दानवों के बीच युद्ध छिड़ गया। वीरों के हुँकार, बाणों की झंकार और धनुषों की टंकार से रणक्षेत्र प्रतिध्वनित हो उठा। अब दोनों ओर अस्त्र - शस्त्रों का प्रयोग होने लगा। देवताओं की रणविद्या के आगे साधारण दानव टिक न सके। वे पलायन करने लगे। नमुचि, शंबरा, अनर्व, द्विमूर्धा, ऋषभ, अंबर, शंकुशिर, विप्रचित्ति, अयोमुख, पुलोम, वृषपर्व, प्रहेचि, हेचि आदि असुर वीर भी देवताओं के प्रताप के आगे ठहर न सके। पर देवताओं के हथियारों का प्रभाव वृत्र पर न के समान था। वृत्र अपने सैनिकों को हिम्मत दे रहा था। भागते असुरों पर अस्त्र - प्रयोग देख वृत्र ने देवताओं को डाँटा। अधर्म युद्ध में उन्हें अग्रसर देख वह उनकी निन्दा करने लगा।

विधि का खेल :

विधि का खेल अत्यंत विचित्र होता है। इंद्र वध के लिए वृत्र का आविर्भाव हुआ था। लेकिन वध करने के कई मौकों को वृत्र ने खो दिया। त्वष्ट महामुनि की यही अभिलाषा थी। संकल्प भी यही था। इसी संकल्प से उसने यज्ञ किया था। यज्ञ, जप - तप के समय मंत्रों के उच्चारण का अद्भुत प्रभाव होता है। हवन के समय त्वष्टा ने इंद्रशत्रु

नामक मंत्र के उच्चारण में विधि के विधान के अनुसार 'उ' का उदात्त उच्चारण न कर 'इ' कार उच्चारण उदात्त रूप से किया था। उससे अर्थ ही बदल गया। मंत्र के प्रभाव के बदलने के कारण आविर्भूत महाबल "इंद्र का वध करने" वाला न होकर "इंद्र से माराजानेवाला" हो गया। इसी कारण मौका मिलने पर भी वृत्र को इंद्र को मारने की सुधि न रही।

इंद्र की चेतावनी :

खतरा टलने के बाद इंद्र ने समय - यापन को उचित न मान दधीचि की अस्थियों से निर्मित वज्रायुध के प्रयोग को ही भला मानकर ऊँचे स्वर में हुँकार किया - "हे वृत्र! अब तेरा अंत समय आ गया है। इधर देख! यह वैष्णव शक्ति से समन्वित दधीचि महामुनि की अस्थियों से निर्मित वज्रायुध है अब तू बच न सकेगा।" कहकर इंद्र ने चेतावनी दी।

वृत्र की भक्ति - भाव की परवशता :

भगवान विष्णु की चर्चा के आते ही वृत्र भक्ति - भावना के वशी भूत हो गया। आँखें सजल हो उठीं। वह ध्यानमग्न हो गया। चेतनावस्था में आकर - "हे इंद्र! यदि यह वज्रायुध विष्णु समन्वित है तो मुझे इससे बढ़कर और क्या चाहिए? श्रीहरि को पाने से अधिक मेरे लिए और कौन प्रिय हो सकता है? यदि वह विष्णु समन्वित नहीं होगा तो डर ही क्या? मुझ पर तुरन्त इसका प्रयोग करो।" वृत्र ने कहा।

रणक्षेत्र प्रबोधात्मक वेदी बन गया :

वृत्र की बातों को सुन इंद्र चकित हो गया। वृत्र की भक्ति - भावना ने इंद्र को अभिभूत कर दिया। वृत्र की बातें उसे ज्ञान - बोध सी भासित हुईं। रणक्षेत्र भगवत्संबंधी संवाद वेदिका बन गई।

“तुम सचमुच भक्त हो तो तुम्हें पराजय कहाँ?” इंद्र ने कहा?

“मैं मानता हूँ कि मेरे लिए पराजय नहीं है। यदि वह अस्त्र विष्णु - शक्ति से युक्त है तो मैं शाश्वत विजय पाने जा रहा हूँ। शाश्वत रूप से सांसारिक बंधनों से मुक्त होने जा रहा हूँ।” वृत्र ने कहा।

महाज्ञानी-सा भासमान वृत्र

बातों का ढंग देख इंद्र को वृत्र महाज्ञानी - सा गोचर हुआ। इसी बात को इंद्र ने वृत्र से कहा।

उन दोनों के बीच जो संवाद चल रहा था उसे देवता, दानव, सारे मुनिजन संभ्रम एवं आश्चर्य से सुन रहे थे। वज्रायुध के प्रयोग करने के लिए वृत्र इंद्र को दिक कर रहा था। उसे मृत्यु - भय नहीं था। देह के प्रति मोह न था। मन उसका श्रीहरि पर टिका था। सब कुछ भूल वह श्रीहरि स्तोत्र - पठन में लग गया। हरि - दर्शन के लिए उसका मन व्याकुल हो रहा था। भक्त की वेदना, आसक्ति, व्यग्रभाव, भक्ति की परवशता को श्रीहरि मुस्कराते हुए देख रहा था। श्रीहरि - दर्शन से वृत्र की बेचैनी कुछ कम हुई।

वृत्र और इंद्र के बीच कई बातें हुईं। पल - पल वृत्र इंद्र के लिए एक महात्मा लगने लगा। ज्ञान एवं कर्तव्य के उपदेशक के रूप में गोचर होने लगा। मंत्रमुग्ध हो इंद्र ने किसी तरह वज्रायुध का प्रयोग किया।

खण्डों में बँटा वृत्र :

वृत्र विचलित नहीं हुआ। उसने अपनी अद्भुत माया - शक्ति के साथ मुँह खोला। ऐरावत जो इंद्र का वाहन था, उसके साथ इंद्र को ही निगल गया वृत्र। देवताओं में हाहाकार मच गया। वे चारों ओर प्राण

बचाकर भागने लगे। क्या इंद्र का अंत हुआ? क्या विष्णु आदि देवताओं का संकल्प व्यर्थ हो गया? क्या त्वष्ट महर्षि के उच्चारण - दोष का कुछ परिणाम नहीं निकला? दधीचि महर्षि का त्याग भी विफल हुआ? क्या स्वर्ग दानवों के हाथ में चला जायेगा? इंद्र का नारायण का कवच की क्या निरर्थक हो जायेगा?

नहीं, नहीं। यह कदापि नहीं हो सकता। धर्म व्यवस्था के रक्षक देवताओं का नाश होगा तो, इसका परिणाम क्या निकलेगा? भगवान का संकल्प क्या है? किसी को कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

वज्रायुध - संपन्न इंद्र वृत्र के उदर को चीर कर ऐरावत सहित बाहर आ गया। अब वृत्रासुर अशक्त था। दोनों हाथ नहीं थे। उदर चीर दिया गया था। केवल प्राण बचे हुए थे। इंद्र एक वर्ष से वज्रायुध से छेदने के कारण वृत्र का सिर खंडित हो गया था।

ओम् शांतिः शांतिः शांति :

इस अद्भुत अवसर पर इस जगत - नाटक के सूत्रधार श्रीहरि मुस्कुराहटों को बिखेरते हुए उस दृश्य का अवलोकन करने लगे। परम भक्त - श्रेष्ठ वृत्र प्रभु - दर्शन से संतुष्ट हो, प्रभु के स्वरूप एवं प्रभुस्मरण को मन में स्थान देकर प्रभु में लीन हो गए। वृत्र धन्य बना।

वृत्र को इतना महत्व मिला, सर्वत्यागी दधीचि के कारण। इस कारण दधीचि मुनिवर धन्य बन गये। त्रिलोकों में उनका नाम अमर हो गया। उनके त्याग - मार्ग पर अग्रसर होने से संसार का हित हुआ। अतः सब को इसी आदर्श का अनुसरण करना चाहिए।

* * *